लुप्त होती लघुवन उपज
खतरे में आदिवासी आजीविका

दक्षिण राजस्थान में आदिवासियों द्वारा लघु वन उपज के संग्रहण एवं विपणन का अध्ययन

महेन्द्र सिंह राव

समर्थक समिति
282, चुंगी नाका, पुराना फतेहपुरा, उदयपुर–313004
फोनः 0294 2451478
ईमेलः samarthak@sancharnet.in
वेबः www.samarthak.org

बजट अध्ययन राजस्थान केन्द्र
पी–1, तिलक मार्ग, सी–स्कीम, जयपुर (राज)
फोन / फैक्स : 0141– 238 5254
ईमेल– info@barcjaipur.org
वेब – www.barcjaipur.org

लुप्त होती लघुवन उपज : खतरे में आदिवासी आजीविका

© बजट अध्ययन राजस्थान केन्द्र

प्रथम संस्करण : दिसम्बर 2009

प्रकाशक : बजट अध्ययन राजस्थान केन्द्र

मुद्रक : नित्य काँति एसोसिएट्स
राजापार्क, जयपुर

अनुक्रम

क्र. सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ संख्या
	भूमिका	4
1.	**वनों पर आदिवासियों के अधिकारों का ऐतिहासिक परिदृश्य** • ब्रिटिश भारत में आदिवासियों के वन अधिकार • स्वतंत्र भारत में वन अधिकार	7
2.	**आदिवासियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति** **जनजतियों का सामाजिक–आर्थिक स्तर** • कृषि–भूमि पर मालिकाना हक • लघु, मध्यम व बडे किसान • कृषि कार्य में संलग्न जनसंख्या • आदिवासी परिवारों की वार्षिक आय • बी.पी.एल. कार्डधारियों का प्रतिशत एवं गरीबी • विभिन्न स्रोतों से कुल वार्षिक आय एवं इनका कुल आय में प्रतिशत • विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आय का वर्गीकरण • विभिन्न कार्यो में संलग्न जनसंख्या	9
3.	**प्रमुख लघु वन उपजः महत्व, संग्रहण तथा विपणन** • प्रमुख वन उपज • वन उपज संग्रह के दौरान आदिवासियों की परेशानियां • आदिवासियों द्वारा लघु वन उपज का संग्रहण, विपणन • जल्दी खराब होने वाली वन उपज • सर्वे क्षेत्र में शहद का संग्रहण के तरीके • विपरीत परिस्थितियों में वन उपज का महत्व • राजस संघ के उद्धेश्य, भूमिका एवं इसको प्राप्त अनुदान • राजस संघ द्वारा लघु वन उपज की खरीद	16
4.	**लुप्त होती लघु वन उपज** • आदिवासी एवं वन प्रबंधन • लुप्त होने वाली प्रमुख वन उपज • सरकार या संगठ़नों से प्राप्त सहायता • राजस्थान में वानिकी हेतु बजट	25
5.	**निष्कर्ष एवं सुझाव**	33
	संदर्भ सूची	36

भूमिका

आदिवासियों का जीवनयापन एवं रहन सहन सदियों से जंगलों से जुड़ा रहा है। ये मुख्य रूप से वन उपज संग्रहण तथा वनों से लकड़ी काटना, वनभूमि पर कृषि कार्य, शिकार करना, तथा घरेलू मजदूरी आदि कार्य करते हैं। आदिवासी लोग अपने भोजन, पशुओं हेतु चारा, परंपरागत दवाइयों, मनोरंजन एवं सांस्कृतिक परंपराओं के निर्वहन हेतु लघु वन उपज या वन उत्पादों पर निर्भर रहते हैं।

राज्य के वन उत्पादों के विकास, संरक्षण एवं अधिकारों की दिशा में कोई स्थायी एवं पारदर्शी योजनाएँ तथा नियम नहीं होने की वजह से वन उपजों के उत्पादन में लगातार कमी हो रही है। जिसका सीधा असर आदिवासियों के सामाजिक–आर्थिक जीवन पर देखा जा सकता है। राज्य के इसी उपेक्षापूर्ण रवैये के कारण पिछले कई वर्षों से बिचौलिये, निजी उद्यमी/व्यापारी तथा सरकारी एजेंसियां लघु वन उपजों को आदिवासियों से कम कीमत या औने–पौने दामों में खरीदकर उद्योगों, कम्पनियों एवं व्यापारियों को ऊँची कीमतों पर बेचकर भारी लाभ कमा रहे हैं। जिससे इस कार्य में संलग्न आदिवासियों का शोषण हो रहा है। इस प्रकार के शोषण के विरूद्वकई क्षेत्रों एवं राज्यों के आदिवासियों ने संगठित होकर सामाजिक न्याय पाने के लिए आंदोलन शुरू किये हैं। जिससे विगत वर्षों में सरकारों ने इस दिशा में कुछ नियम भी बनाये। उदाहरण के लिये "पंचायत उपबन्ध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम" (पेसा एक्ट 1999) के अनुसार वनोपज से होने वाली सम्पूर्ण आय पर मालिकाना स्वामित्व एवं प्रबंधन ग्राम सभा को मिलना चाहिए। राज्य के अनुसूचित क्षेत्र में राजस संघ को लघु वन उपज खरीदने एवं बेचने का अधिकार प्रदान किया गया जिससे आदिवासियों को वनोपज की पूरी दर मिल सके एवं इनको शोषण से बचाया जा सके। लेकिन कुछ वर्षों से राजस संघ इन उद्वेश्यों में असफल होता जा रहा है एवं राजस संघ द्वारा घोषित कीमतों से वन उपज की बाजार कीमतें अधिक होती हैं।

इसके बाद 15 दिसम्बर 2006 को संसद द्वारा अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत वन निवासी (वन मान्यता कानून) अधिनियम पारित किया। इस कानून में मुख्य रुप से आदिवासियों का वन भूमि पर अधिकार पर जोर देता है साथ ही इसमें

आदिवासियों का लघु वन उपज के संग्रह एवं स्वामित्व का अधिकार को भी उल्लेखित करता है। उपरोक्त अधिनियम में वन उपज के परिवहन का अधिकार अस्पष्ट है जिससे वन विभाग के कर्मचारियों एवं ठेकेदारों द्वारा आदिवासियों को वन उपज संग्रहण के दौरान परेशान किया जाता है। इस प्रकार आदिवासियों को वनोपज के संग्रहण एवं विपणन संबंधी कानूनों में कुछ सुधार के बावजूद भी काफी कमियां होने के साथ आदिवासियों में अनभिज्ञता, अशिक्षा, जागरूकता के अभाव एवं अन्य कारणों से इस दिशा में कुछ विशेष परिणाम प्राप्त नहीं हुए हैं। इन्हीं समस्याओं के संदर्भ में बजट अध्ययन राजस्थान केन्द्र, जयपुर ने समर्थक समिति, उदयपुर के सहयोग से दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी बहुल जिलों में लघु वन उपज पर अध्ययन हेतु सर्वे करवाया। इस अध्ययन के प्रमुख उद्वेश्य निम्नलिखित हैं :

1– अध्ययन क्षेत्र में आदिवासियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।

2– आदिवासियों के आर्थिक जीवन में लघु वन उपज के महत्व का अध्ययन करना।

3– अध्ययन क्षेत्र में प्रमुख लघु वन उपज, इनके संग्रहण एवं विपणन की प्रविधियों का अध्ययन एवं क्षरित होने वाली प्रमुख वन उपजों का अध्ययन।

इस सर्वे में उदयपुर, डूंगरपुर, प्रतापगढ़ और राजसमंद जिलों के आदिवासी क्षेत्रों को शामिल किया गया। जिसमें उदयपुर जिले की 6 तहसील, प्रतापगढ़ की 4 तहसील, राजसमंद की 1 तहसील और डूंगरपुर की 1 तहसील के गांवों में लघु वन उपज संग्रह में संलग्न आदिवासी परिवारों का सर्वे करवाया गया। प्रस्तुत सर्वे में उपरोक्त जिलों के गांवों से 298 परिवार लिये गये। सर्वे हेतु एक अनुसूची का निर्माण किया गया जिसमें लघु वन उपज संग्रह में संलग्न आदिवासियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति, आय के विभिन्न स्रोतों, आजीविका में वन उपज की भूमिका एवं महत्व, वन उपज संग्रह के तरीकों, इसके प्रबंधन, संग्रहण तथा विपणन से सम्बंधित विभिन्न समस्याओं पर आधारित प्रश्नों का समावेश किया गया। समर्थक समिति के कमलेन्द्र सिंह राठौड़ ने अनुसूचि बनाने में सहयोग किया साथ ही आंकड़े संग्रहण का कार्य समिति की टीम द्वारा किया गया। प्रत्येक परिवार के मुखिया से अनुसूची के प्रश्नों का उत्तर लिया गया। इसके बाद सर्वे में प्राप्त आँकड़ों एवं तथ्यों का सरलीकरण, सारणीयन एवं वर्गीकरण कर विश्लेषण किया गया। अतः प्रस्तुत सुक्ष्म अध्ययन, मूल रुप से सर्वे क्षेत्र में उपरोक्त उद्वेश्यों को लक्षित करते हुए प्राप्त प्राथमिक आँकड़ों पर आधारित हैं साथ

ही अध्ययन में अन्य स्रोतों का उपयोग भी किया गया है, जिनका यथा स्थान उल्लेख किया गया है। साथ ही इस अध्ययन में वन विभाग एवं राजस संघ के बजट का विश्लेषण कर अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों, राज्य सरकार की नीतियों एवं बजट के अर्न्तसंबंधों को समझने का प्रयास किया गया है।

इस अध्ययन में निम्न निष्कर्ष उभर कर आयेः–

- क्षेत्र के आधे से अधिक आदिवासियों में निरक्षरता व्याप्त है।
- आदिवासियों के प्रमुख कार्य लघु वन उपज संगह, वन भूमि पर कृषि कार्य एवं घरेलू तथा दिहाड़ी मजदूरी आदि है।
- क्षेत्र में संग्रहण के वैज्ञानिक उपकरणों एवं तरीकों के अभाव में उनकी वन उपज खराब हो जाती है अतः क्षेत्र में संग्रहण के वैज्ञानिक उपकरणों का अभाव है।
- सर्वे क्षेत्र में आदिवासियों में विपणन कुशलता का अभाव।
- क्षेत्र के लोग राजस संघ द्वारा घोषित कीमतों से संतुष्ट नही हैं। क्योंकि लघु वन उपज की खुले बाजारों एवं स्वयं सहायता समुहों से प्राप्त कीमतें अधिक होती है।
- क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों से वन उपज की कुछ महत्त्वपूर्ण प्रजातियाँ नष्ट हो रही है।
- वानिकी हेतु राज्य बजट में जनजाति उपयोजना हेतु आवंटित बजट का प्रतिशत बहुत कम (पिछले पांच वर्षों में लगभग 2.99% से 4.37% के बीच) रहा हैं राज्य का सर्वाधिक वन क्षेत्र भी आदिवासी उपयोजना क्षेत्र में ही आता हैं।

आशा है कि प्रस्तुत अध्ययन, दक्षिणी राजस्थान में लघु वन उपज के महत्व, समस्याओं एवं संभावनाओं को समझने एवं क्षेत्र के आदिवासियों की आजीविका में वन उपज के महत्व को उजागर करेगा एवं संस्थाएं आदिवासियों के अधिकारों के प्रति संवेदनशील होंगी।

1. वनों पर आदिवासियों के अधिकारों का ऐतिहासिक परिदृश्य

भारत में वनों एवं वन उपज पर आदिवासियों के पारंपरिक अधिकारों के ऐतिहासिक परिदृश्य पर दृष्टि डालते हैं तो स्पष्ट होता है कि आदिवासी हमेशा से शोषित होते रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति पूर्व ब्रिटिश–शासन काल में वन एवं वन उत्पादों पर ब्रिटिश शासन का नियंत्रण रहता था एवं वनों को व्यापार एवं राजस्व प्राप्ति का स्रोत माना जाता था। ब्रिटिश सरकार इन उद्वेश्यों हेतु ठेकेदारों एवं ऐजेंसियों के माध्यम से वनों की बेढ़ंग कटाई करवाती थी एवं आदिवासियों को किसी प्रकार अधिकार प्राप्त नही थे।

ब्रिटिश भारत में आदिवासियों के वन अधिकार

ब्रिटिश सरकार ने औपनिवेशिक उद्वेश्य से वनों एवं वन क्षेत्रों को राष्ट्रीय सम्पदा घोषित कर दिया एवं स्थानीय आदिवासी समुदायों को इनके उपयोग हेतु प्रतिबंधित कर दिया। ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्धेश्य वनों से औपनिवेशिक व्यापार को बढ़ावा देने के साथ स्थानीय समुदायों के अधिकारों को सीमित करना था। ब्रिटिशराज के नियमों ने वनों को संरक्षित वन, वाणिज्यिक वन, लघु वन एवं चरागाह के रुप में वर्गीकृत कर दिया। संरक्षित वनों एवं वाणिज्यिक वनों को स्थानीय आदिवासी समुदायों हेतु निषिद्ध कर दिया गया। इस प्रकार वन वासियों के परंपरागत वन अधिकार समाप्त होते गए।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने सन् 1807 में सागौन पर रॉयल्टी अधिकार प्राप्त किया जिसके अनुसार स्थानीय लोगों को इमारती वनों के घरेलू उपयोग की अनुमति नहीं थी। इसके बाद सन् 1846 में उपरोक्त अधिकार का विस्तार करके अन्य वनों एवं वन उपज पर लागू कर दिया एवं इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने सन् 1860 तक कंपनी को सम्पूर्ण वन क्षेत्र का अधिकार दे दिया तथा सन् 1864 में इम्पीरियल/शाही वन विभाग की स्थापना की गई। ब्रिटिश सरकार ने सन् 1878 तथा पुनः 1927 मे भारतीय वन अधिनियम लागू किया जिसके द्वारा आदिवासियों के वन संबंधी सभी अधिकार लगभग समाप्त कर दिये गये।

स्वतंत्र भारत में वन अधिकार

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्थानीय वन आश्रित लोगों को आशा थी कि उनके परंपरागत वन अधिकार पुनः प्राप्त होंगे। परन्तु वन अधिकार प्राप्त होना तो दूर,

आदिवासियों की दशा और भी खराब हो गई। देश के नीति निर्माताओं ने वन संबंधी नई नीतियां बनाने के बजाय पुराने नियमों को ही थोड़ा–बहुत फेरबदल कर जारी रखा। परिणामस्वरुप सन् 1947 से 1970 तक उद्योगों एवं कृषि–भूमि निर्माण हेतु वनों की अंधाधुँध कटाई होती रही। इसके बाद सन् 1970 से 1988 की समयावधि में वन संरक्षण की दृष्टि से सरकार ने वनों पर नियंत्रण बढ़ा दिया एवं वन संरक्षण को नीति निर्देशक तत्त्व एवं संवैधानिक कर्तव्य का अंग बना दिया एवं साथ ही मजबुत वैधानिक उपकरण के रुप में वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972 एवं वन संरक्षण अधिनियम 1980 पारित किये गए जिससे वनों के संरक्षण, प्रबंधन एवं उपयोग हेतु स्थानीय आदिवासियों के लिये को स्थान नहीं बचा।

सरकार ने सन् 1988 में राष्ट्रीय वन नीति घोषित की। जिसमें वन संरक्षण एवं क्षरित वन क्षेत्रों के पुर्नविकास हेतु स्थानीय वन संरक्षण समुदायों को शामिल करने की नीति बनाई गई। इसके बाद 24 दिसम्बर, 1996 को भारतीय संविधान की धारा 244 (1) के अन्तर्गत अनुसूची 5 में संशोधन कर आदिवासी क्षेत्रों के लिये "पंचायत उपबन्ध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम" अर्थात् "पेसा कानून" बनाया गया जिसके अन्तर्गत पंचायत क्षेत्र में होने होने वाली लघु वन उपज पर मालिकाना हक ग्राम सभा को दिये जाने की घोषणा की गई। इसके बाद संसद ने 15 दिसम्बर 2006 को राष्ट्रीय वन मान्यता कानून पारित किया गया, जिसके अन्तर्गत लघु वन उपज के संग्रह एवं स्वामित्व का अधिकार तो प्रदान किया गया लेकिन परिवहन के अधिकार को स्पष्ट नहीं किया गया जिससे वन उपज संग्रह के दौरान आदिवासियों को वन विभाग के कर्मचारियों एवं ठेकेदारों द्वारा परेशान किया जाता है।

पूर्व में वर्णित तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि वनों पर आदिवासियों के अधिकारों के संदर्भ में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी कोई विशेष सुधार नही हुआ एवं भारतीय वन अधिनियम 1927 लगभग ज्यों का त्यों ही लागू रहा। वन अधिकारों की दिशा में सुधार की शुरुआत सन् 1988 में राष्ट्रीय वन नीति की घोषणा के साथ हुई लेकिन यह केवल नाम मात्र की सहभागिता तक ही सीमित रहा। इसके बाद "पेसा कानून" एवं 15 दिसम्बर 2006 को राष्ट्रीय वन मान्यता कानून पारित किया गया लेकिन इसमें भी वन उपज परिवहन संबंधी अधिकार अस्पष्ट हैं। अतः इन कानूनों में भी सुधार की आवश्यकता है।

2. आदिवासियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति

राजस्थान में आदिवासी जनसंख्या आर्थिक एवं सामाजिक रूप से काफी पिछडी हुई है। कुछ क्षेत्रों में तो आदिवासी लोग राज्य की मुख्य धारा से कटे हुए हैं। इन लोगों का मुख्य कार्य शिकार करना, लघु वन उपज संग्रहण, वन भूमि पर कृषि कार्य आदि है। हालांकि राजस्थान के उत्तर–पश्चिमी एवं उत्तर–पूर्वी क्षेत्र के आदिवासी लोग मुख्य रूप से कृषि कार्य करते हैं एवं इनकी सामाजिक एवं आर्थिक दशा अन्य क्षेत्रों के आदिवासियों से सुदृढ़ है। वहीं राज्य के दक्षिणी एवं दक्षिण–पश्चिमी राजस्थान के आदिवासियों की स्थिति काफी खराब है। राज्य की आदिवासियों में उच्च जनसंख्या वृद्धि दर, उच्च जन्म/मृत्यु दर, बाल विवाह तथा शिक्षा एवं स्वास्थ्य का निम्न स्तर, देखने को मिलता है। राज्य में आदिवासियों के पास कृषि योग्य भूमि बहुत कम है जिससे कृषि उत्पादन बहुत कम या निम्न जीवन यापन लायक ही हो पाता है। आदिवासियों में निम्न साक्षरता दर एवं जागरूकता के अभाव के कारण ये कई प्रकार से सामाजिक, आर्थिक एवं शारीरिक शोषण के शिकार होते हैं।

राज्य की आदिवासियों में शैक्षणिक /साक्षरता स्तर :

राज्य में आदिवासियों की साक्षरता दर 44.7 प्रतिशत है, जो राज्य की कुल साक्षरता दर (60.40 प्रतिशत) से बहुत कम है साथ ही यह आदिवासियों की साक्षरता दर के राष्ट्रीय औसत 47.1 प्रतिशत से भी कम है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आदिवासियों का साक्षरता स्तर काफी निम्न है। हालांकि 1991–2001 के दशक में इनकी साक्षरता दर में काफी वृद्धि हुई है। सन 1991 में साक्षरता दर 25.3 प्रतिशत थी, जो 2001 में 44.7 प्रतिशत हो गई। इसी प्रकार आदिवासी पुरुषों की साक्षरता दर 1991 में 33.3 प्रतिशत थी, जो 2001 में 62.1 प्रतिशत हो गई एवं महिलाओं की साक्षरता दर 1991 में 4.4 प्रतिशत थी, जो 2001 में 26.2 प्रतिशत हो गई। जबकि राज्य की कुल जनसंख्या की पुरुष व महिला साक्षरता दर क्रमशः 75.7 प्रतिशत व 43.9 प्रतिशत हैं। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि राज्य में आदिवासियों का शैक्षिक स्तर काफी निम्न है एवं महिलाओं की स्थिति तो और भी खराब है। प्रस्तुत अध्याय में हम राज्य के आदिवासियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेंगें।

आदिवासियों में श्रम शक्ति :

राज्य की आदिवासी जनसंख्या मे कार्यशील जनसंख्या 47.6 प्रतिशत है, जो कार्यशील जनसंख्या के राष्ट्रीय औसत 49.4 प्रतिशत से कम है। राज्य में अधिकतर आदिवासी जनसंख्या अकुशल श्रेणी के कार्यों में संलग्न हैं। आदिवासी अधिकतर खेतिहर श्रमिक, दिहाड़ी मजदूर, सीमांत कृषक, वन श्रमिक आदि रुप में कार्य करते हैं।

आदिवासियों की जोतों का आकार एवं स्थिति :

राज्य में आदिवासियों के हिस्से की कृषि जोतों की स्थिति भी निम्नतर है। सन् 1995–96 में अनुसूचित आदिवासी की जोतों का औसत आकार 2.17 हैक्टेयर था, जो 2000–01 में घटकर 1.96 हैक्टेयर हो गया जो राज्य की जोतों के औसत आकार 3.65 हैक्टेयर से बहुत कम है। यही नहीं यह अनुसूचित जाति की जोतों के औसत आकार से भी कम है।

राज्य में आदिवासियों में निर्धनता :

राज्य में आदिवासी जनसंख्या के निर्धनता अनुपात में लगातार वृद्विहो रही है। सन् 1993–94 में आदिवासी निर्धनता अनुपात 28.8 प्रतिशत था, जो 1999–2000 में बढकर 36.5 प्रतिशत हो गया। इसके विपरीत राज्य के कुल औसत निर्धनता अनुपात में कमी हुई है। अतः राज्य की आदिवासी जनसंख्या में निर्धनता की व्यापकता बढती जा रही है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि राज्य में आदिवासियों की जनंसख्या तेजी से बढ़ रही है एवं इसका प्रमुख कारण बाल विवाह का प्रचलन, परिवार कल्याण साधनों की अस्वीकार्यता, अशिक्षा, जागरूकता का अभाव तथा अन्य सामाजिक–सांस्कृतिक कारण हैं। शिक्षा का निम्न स्तर होने के कारण इनमें अकुशल श्रमिकों की जनसंख्या अपेक्षाकृत अधिक है एवं साथ ही निम्न स्वास्थ्य स्तर के कारण इनकी उत्पादक क्षमता भी बहुत कम होती है। आदिवासियों के पास कृषि भूमि कम होने के कारण सिर्फ कृषि कार्य पर निर्भर रहकर इनकी आजीविका मुश्किल से चल पाती होगी। अतः आदिवासी क्षेत्रों में आजीविका के अन्य स्रातों जैसे लघु वन उपज एवं वानिकी, पशुपालन आदि का विकास किया जाना चाहिये।

अध्ययन क्षेत्र में आदिवासियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति

दक्षिणी राजस्थान के अध्ययन क्षेत्र में वर्तमान अध्ययन के अनुसार आदिवासियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति से संबंधित जो परिणाम उभर कर आये उनका विवर ण इस प्रकार हैं :

- **कृषि–भूमि पर मालिकाना हक**

सारणी संख्या 1.1 : कृषि–भूमि पर मालिकाना हक

क्या आप के नाम कृषि भूमि है ?	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
हाँ	217	72.82
नहीं	81	27.18
कुल योग	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

तालिका संख्या 1.2 से प्राप्त परिणामों के आधार पर देखा जा सकता है कि सर्वे क्षेत्र के 72.82 प्रतिशत लोगों के पास ही अपनी खातेदारी कृषि भूमि है। जबकि 27.18 प्रतिशत आदिवासी परिवारों के पास अपने खाते की कृषि भूमि नहीं है जो अपना जीवन यापन लघु वन उपज संग्रह करके या भूमिहीन कृषक एवं दिहाड़ी मजदूर के रूप में कार्य करके करते हैं।

- **लघु, मध्यम व बडे किसान (जमीन के आधार पर वर्गीकरण)**

सारणी संख्या 1.2 : आदिवासियों का लघु, मध्यम व बडे किसानों में वर्गीकरण

वर्ग	लघु किसान (9 बीघा या इससे कम)	मध्यम किसान (10 – 40 बीघा)	बड़े किसान (41 बीघा या इससे अधिक)	कुल योग
व्यक्तियों की संख्या	236	62	0	298
प्रतिशत	79.20	20.80	0	100

नोट : एक हैक्टेयर = 4.5 बीघा
स्रोत– बार्क सर्वे

सारणी संख्या 1.2 से स्पष्ट होता है कि इन आदिवासी बहुल जिलों में छोटे किसान, जिनके पास 9 बीघा अर्थात 2 हैक्टेयर से कम भूमि है, का प्रतिशत 79.20 एवं मध्यम किसानों का प्रतिशत 20.80 है, जबकि बड़े किसान बिल्कुल नहीं हैं। अतः प्राप्त परिणामों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रों में अधिकतर छोटे किसान है, जिनके पास इतनी जमीन नहीं है कि कृषि कार्य या कृषि उत्पादन से बड़े पैमाने पर आय प्राप्त कर सके।

- **कृषि कार्य में संलग्न जनसंख्या**

सारणी संख्या 1.3 : कृषि कार्य में संलग्न जनसंख्या

क्या आप स्वयं कृषि करते हैं ?	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
हाँ	276	92.61
नहीं	22	7.39
कुल योग	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

तालिका संख्या 1.3 से स्पष्ट है कि सर्वे क्षेत्र में लगभग 92.61 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य करती है। 7.39 प्रतिशत लोगों का जबाव था हम कृषि कार्य नहीं करते हैं। अतः अध्ययन से प्राप्त परिणामों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि सर्वे क्षेत्र में अधिकतम जनसंख्या कृषि कार्य करती है जबकि पिछली सारणी संख्या 1.2 में यह स्पष्ट हो चुका है कि 72.82 प्रतिशत लोगों के पास ही स्वयं की कृषि भूमि है। अतः जिनके पास स्वयं की कृषि भूमि नहीं है, वो भूस्वामियों या जमीनदारों के वहाँ कृषि कार्य (साझेदारी एवं कृषि मजदूरी के रूप में) करके अपनी आजीविका चलाते होंगें। तालिका 1.3 में यह भी स्पष्ट हो चुका है कि यहाँ पर अधिकतर छोटे किसान हैं, जिनके पास 9 बीघा से कम भूमि है।

- **आदिवासी परिवारों की वार्षिक आय**

तालिका संख्या 1.4: परिवारों की वार्षिक आय

वार्षिक आय (रु.)	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
20,000 या इससे कम	262	87.92
20,001–40,000	21	7.04
40,000 से अधिक	15	5.04
कुल योग	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

तालिका संख्या 1.4 से स्पष्ट होता है कि सर्वे क्षेत्र में 87.92 प्रतिशत व्यक्तियों की कुल वार्षिक आय 20,000 रू. या इससे कम हैं। जबकि 7.04 प्रतिशत व्यक्तियों की आय 20,001 से 40,000 के बीच है। 40,000 से अधिक आय वाले लागों का प्रतिशत मात्र 5.04 प्रतिशत हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि सर्वे क्षेत्र में अधिकांश आदिवासी लोगों की वार्षिक आय बहुत कम हैं।

- **बी.पी.एल. कार्डधारियों का प्रतिशत एवं गरीबी**

सारणी संख्या 1.5 : अध्ययन क्षेत्र में बी.पी.एल.

क्या आपके पास बी.पी.एल. कार्ड है ?	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
हाँ	120	40.27
नहीं	178	59.73
कुल योग	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

सारणी संख्या 1.5 से स्पष्ट होता है कि सर्वे क्षेत्र में लगभग 40.27 प्रतिशत लोगों के पास ही बी.पी.एल. कार्ड है जबकि लगभग 59.73 प्रतिशत लोगों के पास बी.पी.एल. कार्ड नहीं हैं। इससे इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि आदिवासी क्षेत्रों में सरकारी योजनाओं की पहुंच कितनी है एवं किस प्रकार क्षेत्र के आदिवासी उपेक्षा के शिकार हो रहे हैं ?

- **विभिन्न स्रोतों से कुल वार्षिक आय एवं इनका कुल आय में प्रतिशत**

तालिका संख्या 1.6 : कुल वार्षिक आय में विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त आय का प्रतिशत

स्रोत	सकल वार्षिक आय (रु.)	सकल वार्षिक आय में प्रतिशत
कृषि	2129026	47.50
वन उपज संग्रह	608567	13.59
मजूदरी	1308516	29.19
अन्य	435220	9.72
सकल वार्षिक आय	**4481329**	**100.00**

स्रोत– बार्क सर्वे

तालिका संख्या 1.6 से स्पष्ट है कि सर्वे क्षेत्र में आदिवासी परिवारों को प्राप्त होने वाली सकल वार्षिक आय में कृषि क्षेत्र से 47.50 प्रतिशत, लघु वन संग्रह उपज से 13.59 प्रतिशत, मजदूरी से 29.19 प्रतिशत एवं अन्य स्त्रोतों (प्रवसन, दुकानदारी, ठेकेदारी, कारीगरी आदि) से 9.72 प्रतिशत वार्षिक आय प्राप्त होती है। अतः स्पष्ट होता है कि क्षेत्र में अधिकतम आय कृषि क्षेत्र से प्राप्त होती है। दूसरे प्रमुख स्त्रोतों में मजदूरी प्रमुख है। पिछले कुछ वर्षों से लघु वन उपज से प्राप्त आय में लगातार कमी हो रही है। स्पष्ट है कि लघु वन उपज संग्रह भी इनकी आजीविका के प्रमुख स्त्रोतों में से एक है।

- **विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आय का वर्गीकरण**

तालिका संख्या 1.7 : विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आय

स्रोत	आय वर्गीकरण					
	5000 रु या इससे कम	5001–10000	10001–15000	15001–20000	20000 से अधिक	**कुल योग**
कृषि	129	59	17	7	12	**224**
वन उपज संग्रह	188	14	4	2	1	**209**
मजदूरी	138	45	5	2	2	**192**
अन्य स्रोत	41	6	2	1	2	**53**

स्रोत– बार्क सर्वे

तालिका संख्या 1.7 से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में अधिकांशतः आदिवासियों की विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आय 5000 रु . या इससे कम हैं। जिसमें भी वन उपज संग्रह पर आधारित आदिवासियों की संख्या सर्वाधिक हैं।

- **विभिन्न कार्यो में संलग्न जनसंख्या**

तालिका संख्या 1.8 : विभिन्न कार्यो में संलग्न जनसंख्या

कार्य का प्रकार	**व्यक्तियों की संख्या**	**प्रतिशत**
कृषि	224	75.16
वन उपज संग्रह	209	70.13
मजूदरी	192	64.42
प्रवसन मजदूरी (अन्यत्र कार्य करने जाते है	53	17.78

स्रोत– बार्क सर्वे

तालिका संख्या 1.8 से स्पष्ट है कि सर्वे क्षेत्र में अधिकतर आदिवासी जनसंख्या (लगभग 75.16 प्रतिशत) कृषि कार्य करती है या जिनका मुख्य पेशा कृषि है इसी प्रकार मजदूरी करने वाली जनसंख्या लगभग 64.42 प्रतिशत है। और लघु वन उपज संग्रह में संलग्न जनसंख्या 70.13 प्रतिशत हैं। साथ ही सर्वे में पाया गया कि प्रवासित होकर मजदूरी करने वाली आदिवासी जनसंख्या लगभग 7.78 प्रतिशत है जो अन्य क्षेत्रों (बड़े शहरों यथा– अहमदाबाद, सूरत, मुम्बई) की ओर प्रवासित होकर आजीविका प्राप्त करते हैं।

अतः हम कह सकते है कि सर्वे क्षेत्र में आदिवासी जनसंख्या के मुख्य कार्य कृषि, वन उपज संग्रह वन उपज संग्रह एवं मजदूरी (घरेलू एवं प्रवासित) आदि हैं।

3. प्रमुख लघु वन उपज : महत्व, संग्रहण तथा विपणन

दक्षिणी राजस्थान की अरावली पहाड़ियों के वन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों की आजीविका में लघु वन उपज की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है एवं क्षेत्र के लोग परंपरागत रुप से वन उपज संग्रह करते है। क्षेत्र में पाई जाने वाली प्रमुख वन उपज में सीताफल, महुआ, तेंदुपत्ता, आंवला, शहद, गोंद (धावड़ा,सालर), रतनजोत आदि प्रमुख हैं।

ध प्रमुख वन उपज :

क्षेत्र में पाई जाने वाली प्रमुख वन उपजों का विवरण निम्न प्रकार से है।

सीताफल : यह एक फल है जिसका पेड़ लगभग 15–20 मीटर ऊँचा होता है, जो वर्ष भर हरा–भरा रहता है। इसके फल सितम्बर से नवम्बर के बीच लग जाते हैं एवं लोग संग्रहित कर इन्हें पकाते हैं। इस समयावधि में क्षेत्र के लोगों को इससे काफी आमदनी प्राप्त होती है। सीताफल संग्रहित करके लोग आस–पास के गाँवों, समीप के बाजारों तथा शहरी बाजारों में बेचते हैं। समीप के बाजारों में, मुख्य रुप से आदिवासी महिलायें टोपलों में लेकर जाती हैं जबकि दूर एवं शहर के बाजारों में सामान्यतया पुरुष टोपलों में लेकर जीपों तथा बसों आदि के माध्यम से ले जाते हैं। जिससे काफी मात्रा में फल खराब भी हो जाते हैं।

महुआ : क्षेत्र में महुए के बड़े– बड़े पेड़ होते हैं। पुराने समय में इसके पेड़ काटकर भवन निर्माण व अन्य कार्यों में उपयोग किया जाता था जिससे इनकी संख्या कम होती

गई एवं वर्तमान में अपेक्षाकृत बहुत कम पेड़ बचे है। मार्च– अप्रैल माह मे महुए के फूल लगते है, जो पकने के बाद अपने आप गिरते हैं, जिनको घरेलू एवं व्यापारिक उपयोग हेतु संग्रहित किया जाता है। महुआ फूल या बीज से दवाईयां एवं शराब बनाई जाती हैं। महुए के पेड़ से फूल के बाद जूलाई– अगस्त माह में फल प्राप्त होते हैं जिनको डोलमा कहते हैं। महुआ फल में 35– 40 प्रतिशत तक तेल पाया जाता हैं, जिसको क्षेत्र के आदिवासी व अन्य लोग खाद्य रुप में उपयोग करते है। क्षेत्र में महुआ एक पारिवारिक सम्पत्ति का अंग एवं आय का साधन माना जाता है। परिवार के विभाजन के साथ महुए के अधिकार भी विभाजित होते हैं। वन क्षेत्रों में महुआ फूल/फल का संग्रहण स्थानीय लोगों द्वारा किया जाता है परंतु उपज का आधा हिस्सा आज भी मालिक (जागीरदार) लोगों को देना पड़ता है।

जामुन : जामुन एक फल है जिसका पेड़ 30 मीटर तक की लम्बाई वाला मध्यम वृक्ष होता है। दक्षिणी राजस्थान में जामुन की दो किस्में पाई जाती है जिसमें एक के फल छोटे एवं दुसरे के बड़े होते हैं। एक पेड़ से औसतन 60– 70 किग्रा. फल प्राप्त होता है एवं क्षेत्र के लोगों को जामुन के संग्रह एवं विपणन से जुलाई– अगस्त माह में अतिरिक्त आमदनी प्राप्त होती है। जामुन फल को पकने के बाद अधिक समय तक संग्रहित करके नही रख सकते हैं। इससे सिरका भी बनता हैं।

तेंदुपत्ता : तेंदुपत्ता का उपयोग बीड़ी बनाने में किया जाता हैं। दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रों में तेंदुपत्ता संग्रहण एक महत्त्वपूर्ण गतिविधी हैं। क्षेत्र में तेंदुपत्ता संग्रहण मई– जून माह में किया जाता है जिस समय रोजगार के अन्य अवसर नगण्य होते है। वैसें तेंदुपत्ता संग्रहण कार्य वन विभाग की देख–रेख में होता हैं। 15–20 दिनों में एक परिवार औसतन 3000 से 4000 रु. आय प्रतिवर्ष प्राप्त करता है। तेंदुपत्ता संग्रहण की दर, वन विभाग द्वारा तय की जाती है। इस वर्ष 2009 की तेंदुपत्ता संग्रहण की दर 425 रु. प्रति मानक बोरा (प्रति 100 बण्डल) तय की गई थी। तेंदुपत्ता गिड्डि में बाँधे जाते हैं। सामान्यतया एक गिड्डि में 40–50 पत्ते बाँधे जाते हैं। अतः 50 पत्तों का एक बंडल होता है।

शहद : इस क्षेत्र में शहद प्राप्ति का उपयुक्त समय अप्रैल से जून तक का होता है। इस समयावधि में मुख्यतया आदिवासी लोग परामपरागत तरीकों से शहद संग्रहित कर

आसपास के गांवों, बाजारों, लेम्पस (राजस संघ द्वारा स्थापित दुकानें, जिनके माध्यम से संघ लोगों से लघु वन उपज खरीदता है) एवं स्वयं सहायता समुहों को बेचकर अतिरिक्त आय प्राप्त करते हैं। शहद से सामान्यतया 40 से 60 रुपये प्रति किलो कीमत प्राप्त होती है।

क्षेत्र की प्रमुख लघु वन उपज, उनके उपयोग एवं प्राप्ति का समय :

सारणी संख्या 3.1 दक्षिणी राजस्थान के वन क्षत्रों में पाई जाने वाली प्रमुख वन उपजों इनके उपयोग, संग्रह के मौसम के बारे में विवरण दिया गया है।

तालिका संख्या 3.1 : प्रमुख लघु वन उपज

क्र.सं.	लघु वन उपज का नाम	उपयोग	मौसम
1	सीताफल	खाद्य फल, कस्टर्ड, आईसक्रीम	सितम्बर से नवम्बर
2	आंवला	दवाई ,तेल, खाद्य	नवम्बर से अप्रैल
3	डोलमा	दवाई, खाद्य तेल	जून–जुलाई
4	महुआ फूल	दवाई, शराब	मार्च–अप्रैल
5	तेदुपत्ता	बीड़ी	अप्रैल–मई
6	शहद	दवाई, खाद्य	मई–जून
7	सफेद मूसली	दवाई	सितम्बर–अक्टूबर
8	अरण्डी	अखाद्य तेल	नवम्बर–दिसम्बर
9	पुँवाड़	पशु आहार	सितम्बर–नवम्बर
10	रतनजोत	दवाई–तेल	सितम्बर–नवम्बर
11	कणजी	अखाद्य तेल	जनवरी–मार्च
12	अरीठ़ा	साबुन	फरवरी–अप्रैल
13	पलाश बीज	गोंद, रंग	मार्च–जून
14	गोंद (धावड़ा, सालर)	खाद्य, अखाद्य,दवाई	मार्च से जून

स्रोत– समर्थक समिति

अध्ययन में प्राप्त वनोपज से सम्बधित सूचनाएं

- **वन उपज संग्रह के दौरान आदिवासियों की परेशानियां :**

तालिका संख्या 3.2 : आदिवासियों की परेशानियां

परेशानियाँ / कठिनाईयाँ	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
ठेकेदारों व वन विभाग द्वारा रोके जाना।	56	18.80
जंगली जानवरों तथा डाकूओं का डर।	106	35.57
जंगल में दूर दूर तक पैदल जाना, पेड़ से गिरने का डर।	122	40.93
किसी प्रकार की परेशानी नहीं	14	4.70
कुल योग	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

सारणी संख्या 3.2 को देखने से यह पता चलता है कि सर्वे क्षेत्र में आदिवासियों को लघु वन उपज संग्रह करने के दौरान कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उपरोक्त तथ्यों के अनुसार क्षेत्र के लगभग 18.80 प्रतिशत लोगों ने बताया कि जब वे वन उपज संग्रह के लिए जाते हैं तो उन्हें वन विभाग के कर्मचारियों एवं ठेकेदारों द्वारा कई प्रकार से परेशान किया जाता है। जैसे – कर्मचारियों द्वारा वन क्षेत्र में प्रवेश पर रोक, वन उपज संग्रह करने पर कर्मचारियों व ठेकेदारों द्वारा मारपीट करना, माल छीन लेना, कार्यवाही करने की धमकी देना आदि। इसी प्रकार लगभग 35.57 प्रतिशत व्यक्तियों ने बताया कि उन्हें वन उपज संग्रह के दौरान जंगली जानवरों शेर, चीता, भालु, सांप आदि का डर रहता हैं। कई बार डाकुओं एव जानवरों का संग्रहकर्त्ताओं पर हमला भी हो जाता हैं, जिससे काफी जान–माल का नुकसान होता है। साथ ही 40.93 प्रतिशत व्यक्तियों ने बताया कि उन्हें लघु वन उपज संग्रह करने हेतु दूर दूर तक पैदल कंकरीली घाटियों, संकरे रास्तों एवं उजाड़ वन में भटकना पडता है। इस प्रकार वन उपज संग्रह एक कठिन कार्य है एवं काफी मेहनत लगने के

बावजूद लघु वन उपज के दाम बहुत ही कम मिलते हैं। सर्वे क्षेत्र के 4.7 प्रतिशत व्यक्तियों ने बताया कि वन उपज संग्रह में उन्हें किसी प्रकार की समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता है।

अतः प्राप्त परिणामों के आधार पर हम कह सकते है कि आदिवासियों को वन उपज संग्रह में काफी समस्याओं का सामना करना पडता है। वन उपज संग्रह संबंधी कई प्रकार के अधिकार आदिवासियों को प्राप्त होने के बावजूद भी वन विभाग के कर्मचारियों एवं ठेकेदारों द्वारा इनको प्रताड़ित किया जाता है। इसी प्रकार की अन्य कठिनाइयों के बावजूद भी इनको वन उपज की सही कीमत प्राप्त नहीं हो पाती है जिससे ये शोषण के शिकार होते हैं।

- **आदिवासियों द्वारा लघु वन उपज का संग्रहण, विपणन**

तालिका संख्या 3.3 लघु वन उपज का विपणन

वनोपज संग्रहण के बाद के बाद बेचने का समय।	**व्यक्तियों की संख्या**	**प्रतिशत**
जिस समय बाजार में दरें ज्यादा मिलती है।	110	36.91
जरूरत पड़ने पर (शादी, मौत दवाई, बीमारी के ईलाज व सामान खरीदने हेतु)	170	57.04
जल्दी खराब होने के डर से संग्रह करते ही बेच देते है।	18	6.05
कुल योग	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

तालिका संख्या 3.3 का उद्देश्य सर्वे क्षेत्र में आदिवासियों में विपणन कुशलता को जानना है। आदिवासी वन उपज संग्रह करने के बाद दुकानदार, ठेकेदार, स्वयं सहायता समूह एवं राजस संघ को बेचते हैं। लेकिन अधिकतर जनसंख्या विपणन कुशलता एवं सौदेबाजी क्षमता की कमी के कारण वनोपज की बिक्री से अधिकतम लाभ प्राप्त नहीं

कर पाते हैं। सर्वे में पाया गया कि लगभग 57.04 प्रतिशत लोग अपनी उपज को पारिवारिक जरूरतों एवं आयोजनों (जैसे शादी, मौत, दवाई, बीमारी के ईलाज व घरेलू सामान खरीदने के समय) हेतु धन की आवश्यकता पड़ने पर बेचते हैं। जिस समय यह नहीं देखा जाता है कि बाजार में उपज के भाव क्या है एवं लाभ अधिकतम होगा या नहीं। जबकि 36.91 प्रतिशत व्यक्तियों ने बताया कि वन उपज को उस समय बेचते हैं जब बाजार में उनकी कीमतें अच्छी हों, जिससे विक्रय से प्राप्त लाभ अधिकतम हो सके। तथा लगभग 6.05 प्रतिशत व्यक्तियों ने बताया कि वे वन उपज को खराब होने के डर से संग्रह करते ही बेच देते हैं, क्योंकि वन उपज को लम्बे समय तक संग्रहण करने वैज्ञानिक तरीकों/उपकरणों का अभाव है। ये संग्रहण के देशी तरीके अपनाते हैं जिससे 2 या 3 दिन तक वन उपज को संग्रह करके रखा जा सकता है। अतः उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि क्षेत्र के आदिवासियों में विपणन कुशलता का अभाव होने के साथ ही संग्रहण के उचित साधनों का अभाव होने से भारी मात्रा में वन उपज खराब हो जाती हैं जिससे कम कीमत पर बेचना पड़ता है एवं लाभ भी कम रहता है। यद्यपि अलग–अलग वनोपज के लिये अलग हो सकती है, हालांकि हमारे पास भिन्न–भिन्न वनोपजों के लिये अलग–अलग आंकड़े उपलब्ध नही हैं।

वन उपज के खराब होने की समस्या

तालिका संख्या 3.4 :बाजार में बेचने से पहले वन उपज के सड़ने की समस्या

क्या बाजार में बेचने से पहले वन उपज के खराब हाने की समस्या आती है ?	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
हाँ	212	71.14
नहीं	86	28.86
कुल योग	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

सर्वे क्षेत्र में यह जानने की कोशिश की गई कि जब आदिवासी लघु वन उपज संग्रह कर लेने के बाद, बाजार में बेचने से पहले अपने पास संग्रह करके रखते है तो संग्रहण के बाद वह खराब होती है या नहीं। सर्वे क्षेत्र में 71.14 प्रतिशत लोगों ने बताया कि संग्रहण के

आधुनिक साधनों व सही तरीकों के अभाव में वन उपज खराब हो जाती है। जबकि 28.86 प्रतिशत व्यक्तियों ने बताया कि वन उपज खराब नहीं होती है या उनके पास संग्रहण के उचित साधन है। अतः सर्वे क्षेत्र में अधिकतम जनसंख्या का कहना कि संग्रहण के उचित साधनों के अभाव में वन उपज खराब हो जाती है।

- **जल्दी खराब होने वाली प्रमुख वन उपज**

तालिका संख्या 3.5 : जल्दी खराब होने वाली प्रमुख वन उपज

वन उपज	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
तेंदुपत्ता	126	42.28
सीताफल, केरी (देशी आम)	134	44.96
जामुन, करमदा, बिल्ला	38	12.76
कुल	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

जल्दी खराब होने वाली प्रमुख वन उपजों में सीताफल, तेंदुपत्ता, आँवला, केरी (देशी आम), जामुन करमदा, बिल्ला, आदि प्रमुख है। सर्वे क्षेत्र में 44.86 प्रतिशत लोगों ने बताया कि सीताफल एवं आम पकने के बाद मुश्किल से 2 या 3 दिन संग्रह करके सुरक्षित रख सकते हैं उसके बाद ये सड़ने लग जाते हैं। अतः लम्बे समय तक संग्रहित कर सुरक्षित रखने के वैज्ञानिक तरीकों एवं उपकरणों के अभाव में भारी मात्रा में ये फल खराब हो जाते है एवं संग्रहकर्ताओं की मेहनत बेकार हो जाती है। अर्थात अधिक आमदनी प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं। सर्वे क्षेत्र में 42.28 प्रतिशत आदिवासियों ने बताया कि तेंदुपत्ता एवं आँवला भी जल्दी खराब हो जाता हैं साथ ही लगभग 12.76 प्रतिशत व्यक्तियों ने बताया कि जामुन, करमदा, आदि जल्दी सड़ जाते हैं। अतः उपरोक्त लघु वन उपजों को सड़ने से बचाने एवं लम्बे समय संग्रह कर सुरक्षित रखने हेतु वैज्ञानिक उपकरणों की व्यस्था की जानी चाहिए।

- **सर्वे क्षेत्र में शहद का संग्रहण के तरीके**

तालिका संख्या 3.6 : शहद का संग्रहण के तरीके

शहद संग्रहण	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
आग और धुँआ	192	64.42
वैज्ञानिक तरीकों से	42	14.09
अन्य तरीके (छत्ते पर पानी डालकर या टहनी हिलाकर आदि)	64	21.49
कुल योग	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

सर्वे क्षेत्र में लगभग 64.42 प्रतिशत आदिवासियों ने बताया कि शहद संग्रहण के समय वे आग व धुँएं का उपयोग करते है जबकि 2 1.49 प्रतिशत आदिवासी छत्ते पर पानी डालकर व टहनी काटकर शहद संग्रहित करते हैं। वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग केवल 14.09 प्रतिशत आदिवासी ही करते हैं। अतः क्षेत्र के अधिकतर आदिवासियों में शहद संग्रहण की वैज्ञानिक विधियों के प्रति जागरूकता नहीं हैं। यें शहद संग्रहण हेतु आग व धुँए के उपयोग करते हैं जिससे कई बार जंगल में आग लग जाती है एवं वनस्पति एवं जीव–जंतु नष्ट हो जाते है।

शहद संग्रहण के पारंपरिक तरीकों से हानियाँ

तालिका संख्या 3.7 : शहद संग्रहण हेतु आग व धुंए के उपयोग से हानियाँ

शहद संग्रहण के लिये आगे कारण हानि	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
वन उपज तथा जीव–जन्तु नष्ट हो जाते हैं।	179	60.06
आग व धुंए से मधुमक्खियाँ जल जाती हैं।	74	24.83
नहीं जानते।	45	15.11
कुल योग	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

सर्वे के दौरान पाया गया कि शहद संग्रहण हेतु आग व धुँएं के उपयोग से जंगल में आग लग जाती है जिससे वन उपज व जीव–जन्तु नष्ट हो जाते है एवं मधुमक्खियाँ भी जलकर मर जाती हैं।

- **विपरीत परिस्थितियों में वन उपज का महत्व**

तालिका संख्या 3.8 : विपरीत परीस्थितियों में वन उपज का महत्व

प्राकृतिक आपदा, सूखा या अन्य विपरीत परिस्थितियों के समय वन उपज का उपयोग	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
खाद्य सामग्री के रूप में।	145	48.67
विक्रय से प्राप्त आय का उपयोग घरेलू सामान खदीदन में।	77	25.83
अन्य रूप में	76	25.50
कुल योग	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

सर्वे क्षेत्र में अधिकतर आदिवासियों ने बताया कि विपरीत परिस्थितियों (यथा आपदा, सूखा, अकाल आदि) में वन उपज को खाद्य सामग्री के रूप उपयोग किया जाता है। घरेलू सामग्री खरीदने हेतु भी गांवों में लघु वन उपज का उपयोग किया जाता हैं। इसके अलावा लघु वन उपज के अन्य उपयोग जैसे– महुए की फूल से शराब, गोंद एवं तेल का खाद्य व दवाई के रूप में, पशु आहार आदि हैं। अतः लघु वन उपज का क्षेत्र के लोगों के जीवन में बहुत महत्त्व हैं।

- **राजस संघ के उद्धेश्य, भूमिका एवं इसको प्राप्त अनुदान**

राजस संघ : एक परिचय

सरकार ने आदिवासियों को संगहित वन उपज के संग्रहण, विपणन एवं प्रशोधन में सहायता प्रदान करवाने हेतु राजस संघ की स्थापना की।लेकिन राजस संघ अपने उद्वेश्यों मे

असफल होता जा रहा है। इस प्रसंग में हम राजस संघ की गतिविधियों में उसे प्राप्त होने वाले सरकारी अनुदान की विस्तृत चर्चा करेंगे। राजस्थान के अनुसूचित क्षेत्र एवं सहरिया क्षेत्र के आदिवासियों के विकास एवं कल्याण हेतु राज्य स्तर की शीर्ष संस्था के रुप में राजस्थान जनजातीय क्षेत्रीय विकास सहकारी संघ (राजस संघ) की स्थापना राजस्थान सहकारी अधिनियम 1965 के अन्तर्गत सन् 1976 में की गई। वर्ष 2007–08 तक राजस संघ के कुल सदस्यों की संख्या 343 हो चुकी थी जिनमें 268 लेम्पस एवं 8 क्रय विक्रय समीतियां हैं, जिनके माध्यम से यह विभिन्न क्षेत्रों में वन उपज खरीदता है। राजस संघ के प्रमुख उद्वेश्य निम्नलिखित हैं :

- कार्यक्षेत्र में आदिवासियों को सेवायें उपलब्ध करवाना।

अपने उपरोक्त उद्वेश्यों की प्राप्ति एवं कार्यों के संचालन हेतु राजस संघ के पास 15 करोड़ की अधिकृत पूंजी के साथ लगभग 10.80 करोड़ की प्रदत्त हिस्सा पूंजी हैं एवं इसको केन्द्रीय प्रवर्तित योजना एवं राज्य आयोजना के अन्तर्गत भी सहायता प्राप्त होती हैं। फिर भी राजस संघ पिछले कुछ वर्षों से अपने उपरोक्त उद्वेश्यों से असफल रहा हैं। जिससे आदिवासियों को लघु वन उपज के पूरे दाम नही मिल रहे हैं। राजस संघ द्वारा घोषित कीमतों से बाजार कीमतें अधिक होती है जिससे ये लोग अपनी उपज को खुले बाजारों में बेचना लाभदायक समझते हैं।

राजस संघ को प्राप्त अनुदान :

सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग (अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों का कल्याण) के अन्तर्गत राजस संघ को प्राप्त सहायता का विवरण निम्न तालिका में दिया गया हैं।

तालिका संख्या 3.9 : राजस संघ को प्राप्त अनुदान (राशि लाख में)

वर्ष	2005–06	2006–07	2007–08	2008–09 RE	2009–10 BE
आयोजना भिन्न व्यय	0	0	0	0	0
आयोजना व्यय	0	0	0	73	.02
केन्द्रिय प्रवर्तित योजना व्यय	0	0	65	25	65
कुल योग	**0**	**0**	**65**	**98**	**65.02**

स्रोतः राजस्थान बजट पुस्तिका , मांग सं.–30, योग–796

पिछले पाँच वर्षों में इस विभाग से राजस संघ को प्राप्त होने वाले अनुदान का विवरण देखते हैं तो देखते है कि वर्ष 2005–06 एवं 2006–07 में इसको प्राप्त अनुदान शून्य था। उसके बाद राजस संघ को वर्ष 2007–08 में केन्द्र प्रवर्तित योजना के अन्तर्गत 65 लाख की राशि आवंटित हुई एवं वर्ष 2008–09 के संशोधित अनुमान में यह अनुदान 98 लाख हो गया जिसमें से 65 लाख आयोजना मद एवं 25 लाख केन्द्रीय प्रवर्तित योजना के अन्तर्गत अनुमानित किए गए हैं। इसके विपरीत वर्ष 2009–10 के अनुमानित बजट में कम करके 65. 02 लाख कर दिया गया जिसमे .02 लाख आयोजना मद एवं 65 लाख केन्द्रिय प्रवर्तित योजना के अन्तर्गत प्राप्त हुए।

? राजस संघ द्वारा लघु वन उपज की खरीद

राजस संघ द्वारा जनजाती उपयोजना क्षेत्र में लघु वन उपज का अधिकृत ऐजेंटों जैसे– लेम्पस, ग्रामीण वन सुरक्षा एवं प्रबंधन समितियों एवं ग्राम पंचायतों के माध्यम से प्रचलित बाजार भाव एवं गुणवत्ता के आधार पर संग्रहित करन के पश्चात विपणन किया जाता है। खरीदी जाने वाली प्रमुख वन उपजों में महुआ फूल, डोलमा, रतनजोत, आँवला, कणज, पुवाड़ आदि प्रमुख हैं।

पिछले चार वर्षो में निम्नानुसार राशि का वन उपज खरीदी गयी।

तालिका संख्या 3.10 : लघु वन उपज की खरीद

संग्रहण वर्ष	खरीद (राशि लाख में)
2004–05	46.90
2005–06	32.90
2006–07	43.92
2007–08	94.82

स्रोतः–राजस संघ प्रतिवेदन 2007–08

राजस संघ द्वारा खरीदी जाने वाली लघु वन उपज वर्ष 2004–05 में 46.90 लाख रूपये की थी। इसके बाद वर्ष 2005–06 में कम होकर 32.90 लाख रूपये की ही रह गई वहीं वर्ष 2006–07 में 43.92 लाख रु. राशि की वन उपज संग्रहित की गई। उपरोक्त वर्षों में वन उपज की मात्रा में कमी संभवतया कई वन क्षेत्रों को सेंचूरी क्षेत्र घोषित किये जाने के कारण हुई। वर्ष 2007–08 में 94.82 लाख रु. राशि की लघु वन उपज खरीदी गई। इससे यह तो स्पष्ट होता है कि राजस संघ की राजस्व आय तो बढ़ रही हैं लेकिन वन उपज संग्रह करने वाले लोगों की विपणन क्षमता के विकास, प्रशिक्षण एवं विकास हेतु किये जाने वाले प्रयास नगण्य हैं। वन विभाग प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये खर्च वानिकी विकास पर करता हैं। वानिकी के दौरान रोपे जाने वाले अधिकतर पौधो में शीशम, बबूल, पीपल, यूकलिप्टस आदि होते है जबकि वन उपज की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण पौधे बहुत कम रोपे जाते हैं।

4. लुप्त होती लघु वन उपज

? आदिवासी एवं वन प्रबंधन

भारत में सर्वाधिक भूमि उपयोग कृषि के बाद वानिकी में होता है। देश के 22 प्रतिशत भू–भाग पर वन क्षेत्र आच्छादित है एवं देश के सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में वनों का योगदान लगभग 1 प्रतिशत से अधिक है। अतः वन संरक्षण एवं जैव–विविधता को बनाए रखने हेतु आदिवासियों एवं वन

विभाग की सहभागिता की अवधारणा 90 के दशक में सामने आई। साझा वन प्रबंधन का मूल उद्धेश्य वन–वासियों को वन संरक्षण से जोड़ना हैं।

देश के कुछ राज्यों ने "साझा वन प्रबंधन" कार्यक्रम को 1990 में ही लागू कर दिया जबकि कुछ राज्यों ने इसे बाद में अपनाया। वर्तमान में 27 राज्य "साझा वन प्रबंधन" कार्यक्रम को अपना रहे हैं। एवं जिसके अन्तर्गत लगभग 173 लाख हैक्टेयर वन क्षेत्र हेतु 85 हजार ग्राम वन सुरक्षा एवं प्रबंधन समितियाँ बन चुकी हैं। भारत के चार राज्यों (आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र) ने अपने दो–तिहाई वन क्षेत्र को "साझा वन प्रबंधन" कार्यक्रम के अन्तर्गत ले लिया हैं।

राजस्थान अभी "साझा वन प्रबंधन" कार्यक्रम की दृष्टि से अन्य राज्यों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ हैं। राज्य में साझा वन संरक्षण एवं प्रबंधन की दृष्टि से स्थानीय समुदायों एवं वन विभाग की सहभागिता पर आधारित "साझा वन प्रबंधन" कार्यक्रम 15 मार्च 1991 को आरंभ किया गया। इस समय राज्य में 175 इको डेवलपमेंट कमेटियाँ गठित हो चुकी हैं। वर्ष 2007–08 तक 4882 ग्राम वन सुरक्षा एवं प्रबंधन समितियाँ गठित हो चुकी हैं। ये लगभग 7.79 लाख हैक्टेयर वन क्षेत्र का प्रबंधन कर रही हैं, जो कि अन्य राज्यों जैसे मध्य प्रदेश (55.00 लाख हैक्टेयर), छत्तीसगढ़ (28.46 लाख हैक्टेयर), आंध्र प्रदेश (28.46 लाख हैक्टेयर), महाराष्ट्र (14.11 लाख हैक्टेयर), आदि की तुलना में काफी कम हैं। वहीं राज्य में प्रति कमेटी वन क्षेत्र लगभग 160 हैक्टेयर है, जो भी अन्य राज्यों एवं राष्ट्रीय औसत से बहुत कम हैं। अतः राज्य में "साझा वन प्रबंधन" कार्यक्रम की क्रियांवितता को सुदृढ़ करने की आवश्यकता हैं। जिससे कि राज्य में जैव–विविधता एवं वन संरक्षण को बनाये रख सके।

- **लुप्त होने वाली प्रमुख वन उपज**

तालिका संख्या 4.1 : लुप्त होने वाली वन उपज

क्या पिछले दस वर्षों से वन उपज की कुछ प्रजातियाँ लुप्त होती जा रही हैं ?	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
हाँ	242	81.20
नहीं	56	18.80
कुल योग	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

लुप्त होती लघुवन उपज : खतरे में आदिवासी आजीविका

सर्वे क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों से वर्षा की कमी एवं मानसून की अनियमितता के कारण अकाल की स्थितियाँ पैदा हो रही हैं जिससे वन संसाधन लुप्त होते जा रहे हैं। जिसका सीधा असर क्षेत्र के आदिवासियों की आजीविका पर पड़ रहा है। अकाल के अलावा वन संसाधनों की अनियमित एवं बेढंग से कटाई, वन उपज संग्रह के अनुपयुक्त तरीके, अन्य क्षेत्रों में रोजगार की कमी आदि कारण प्रमुख है। सर्वे के दौरान क्षेत्र के लगभग 81.20 प्रतिशत व्यक्तियों ने बताया पिछले कुछ वर्षो से वन उपज की कुछ प्रजातियाँ लुप्त होती जा रही हैं जबकि 18.80 प्रतिशत व्यक्तियों ने इस संदर्भ में नकारात्मक जवाब दिया। अतः हम कह सकते है कि कुछ वर्षों से क्षेत्र में वन उपज की कुछ प्रजातियों के लुप्त होने की समस्या व्यापक हो रही है।

तालिका संख्या 4.2 : लुप्त होने वाली वन उपज

लुप्त होने वाली प्रमुख वन उपज	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
गोंद, लाख, शहद, कत्था	120	40.26
धावडा, खेर	74	24.82
सफेद मुसली	90	30.20
अरीठा, करैया	14	4.72
कुल योग	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

सर्वे क्षेत्र में लुप्त हो रही वन उपजों में सालर, करैया, धावडा, अरीठा, सफेद मूसली आदि प्रमुख है। सर्वे के दौरान 40.26 प्रतिशत व्यक्तियों ने बताया गोंद एवं लाख प्राप्त होने वाली वन उपज तेजी से लुप्त होती जा रही है जबकि 24.82 प्रतिशत व्यक्तियों ने बताया कि क्षेत्र में धावडा, सालर, खाखरा (जिससे गोंद एवं लकड़ी प्राप्त होती है) भी लुप्त हो रहे है। लगभग 30.20 प्रतिशत व्यक्तियों ने बताया कि सफेद मूसली की उपज भी लगातार कम हो रही है।

अध्ययन से प्राप्त परिणामों के आधार पर कह सकते है कि गोंद तथा लाख की प्राप्ति वाली वन उपज उपज जैसे खेर धावडा, सालर, करैया आदि तेजी से लुप्त होती जा रही है जिससे लाख व गोंद उत्पादन भी कम हो रहा है।

- **वनोपज संग्रहण में रखी जाने वाली सावधानी**

तालिका संख्या 4.3 : वन उपज संग्रहण में सावधानी

क्या वन उपज संग्रह करते समय यह ध्यान रख ते है कि वन उपज खराब न हो ?	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
हाँ	239	80.20
नहीं	59	19.80
कुल योग	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

तालिका संख्या 4.3 से यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्र के आदिवासी, वन उपज संग्रह करते समय वनस्पति को नुकसान नहीं पहुंचे, यह ध्यान रखते है या नही। सर्वे के दौरान लगभग 80.20 प्रतिशत व्यक्तियों ने बताया वन उपज संग्रह करते समय वे लघु वन उपज को हानि नहीं पहुंचाते है जबकि 19.80 प्रतिशत लोगों ने बताया कि वे लघु वन उपज संग्रह के दौरान हानि की परवाह नहीं करते है अतः हम कह सकते है कि क्षेत्र की अधिकांश जनसंख्या लघु वन उपज के संरक्षण के प्रति सचेत है।

- **पेड़–पौधों को होने वाले नुकसान से बचाव :–**

तालिका संख्या 4.4 : वन उपज को हानि से बचाने हेतु सावधानियां

वन उपज को हानि से बचाने हेतु किन किन बातों का ध्यान रखते है ?	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
पेड़ तथा टहनियाँ नहीं काटते है।	142	47.65
कच्चे फल नहीं तोड़ते एव न ही नीचे गिरने देते है।	132	44.29
वन उपज को हवा, पानी से बचाना	24	8.06
कुल योग	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

क्षेत्र में आदिवासी वन उपज को हानि से बचाने हेतु पेड तथा टहनियॉ नहीं काटते हैं और न ही कच्चे फल तोडते है एवं न ही नीचे गिरने देते है। संग्रहित वन उपज जल्दी खराब न हो इसलिये हवा एवं पानी का भी ध्यान रखते हैं।

- **सरकार या संगठनों से प्राप्त सहायता**

तालिका संख्या 4.5 : सरकार या संगठनों से प्राप्त सहायता

क्या पेड़ पौधे लगाने हेतु किसी प्रकार की सहायता मिलती है ?	व्यक्तियों की संख्या	प्रतिशत
हाँ	91	30.54
नहीं	207	69.46
कुल	**298**	**100**

स्रोत– बार्क सर्वे

क्षेत्र में सर्वे के दौरान लगभग 69.46 प्रतिशत लोगो ने बताया कि हमें सरकार या जन संगठ़नों द्वारा पेड़ पौधे लगाने हेतु किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नहीं मिलती है जबकि लगभग 30.54 प्रतिशत व्यक्तियों ने बताया कि उन्हें सरकार द्वारा पेड़ पौधे लगाने हेतु आर्थिक सहायता मिलती है। अतः हम कह सकते है कि वन संरक्षण एवं विकास की योजनाओं की उचित क्रियांवितता का अभाव है।

६ राजस्थान में वानिकी हेतु बजट

राजस्थान में वन विभाग प्रति वर्ष वानिकी पर करोड़ों रुपये खर्च करता है उसके बावजूद भी वानिकी विकास में कोई सुधार नही हो रहा है एवं वनों का क्षरण मुख्यतया परम्परागत वनों जैसे–धावडा, खेर, महुआ, सालर, सफेद मूसली, अरीठा, करैया आदि तेजी से लुप्त होते जा रहे हैं एवं उपरोक्त वन ही लघु वन उपज के प्रमुख स्रोत हैं। जबकि वानिकी में उगाये जाने वाले पौधों में अधिकतर सफेदा (यूकलिप्टस), बबूल, शीशम, एवं अन्य जल्दी बढने वाले पौधे होते हैं एवं लघु वन उपज की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण पौधे जैसे खेर, महुआ, सालर, सफेद मूसली, खेर, जामुन आदि बहुत कम उगाये जाते है क्योंकि वृद्धि दर बहुत धीमी होने के साथ लागत भी अधिक होती है।

राज्य एवं जनजाती उपायोजना क्षेत्र में वानिकी पर बजट का विवरण तालिका संख्या 4.6 में बताया गया है :

तालिका संख्या 4.6 : राज्य एवं जनजाती उपायोजना क्षेत्र में वानिकी हेतु बजट (राशि–करोड़ में)

वर्ष	**2005–06**	**2006–07**	**2007–08**	**2008–09** संशोधित अनुमान	**2009–10** प्रावधित
राज्य बजट (वानिकी हेतु)	148.08	156.51	166.54	250.47	317.27
जनजाती उपायोजना हेतु बजट	4.43	5.17	7.28	7.88	10.15
ज. जा. उ. क्षेत्र का राज्य बजट में प्रतिशत	2.99%	3.30%	4.37%	3.14%	3.19%

स्रोत : राजस्थान बजट पुस्तिका : वानिकी बजट 2007, 08, 09

तालिका संख्या 4.6 से स्पष्ट होता है कि पिछले पाँच वर्षों में राज्य में करोड़ो रुपये का बजट वानिकी के विकास हेतु रखा गया जिसमें जनजाति उपयोजना हेतु आवंटित बजट का प्रतिशत बहुत कम (लगभग 2.99 प्रतिशत से 4.37 प्रतिशत के बीच) रहा हैं राज्य का सर्वाधिक वन क्षेत्र भी जनजाति उपयोजना क्षेत्र में ही आता हैं।

5. निष्कर्ष एवं सुझाव

- प्रस्तुत अध्ययन दक्षिणी राजस्थान के जिलों– उदयपुर, डूंगरपुर, प्रतापगढ़ तथा राजसमंद की लघु वन उपज संग्रह में संलग्न आदिवासी जनसंख्या पर आधारित है।
- आदिवासियों के प्रमुख कार्य लघु वन उपज संगह, वन भूमि पर कृषि कार्य एवं घरेलू तथा दिहाड़ी मजदूरी आदि है।
- क्षेत्र की प्रमुख लघु वन उपजों में सीताफल, तेंदुपत्ता, महुआ, शहद, गोंद (धावड़ा, सालर), कत्था (खेर), सफेद मूसली, रतनजोत, आदि हैं।
- सर्वे क्षेत्र के लगभग 72.82 प्रतिशत आदिवासियों के पास स्वयं की खातेदारी भूमि है जबकि 27.18 प्रतिशत लोंगों के पास राजस्व खातों में स्वयं की कृषि भूमि नही है।
- क्षेत्र के लगभग 79.20 प्रतिशत आदिवासी लोग लघु किसानो की श्रेणी में आते है, जिनके पास 1 हैक्टेयर से भी कम कृषि भूमि है। अतः जिनके पास स्वयं की भूमि नहीं है, वे जमींदारों एवं भूस्वामियों की भूमि पर कृषि करते हैं।
- क्षेत्र में 87.92 प्रतिशत व्यक्तियों की कुल वार्षिक 20,000 रु से कम पायी गई इससे यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्र में आदिवासी लोगों की वार्षिक आय बहुत कम हैं।
- क्षेत्र में साक्षर व्यक्तियों का प्रतिशत लगभग 43.62 प्रतिशत है अतः क्षेत्र के आधे से अधिक आदिवासी जनसंख्या में निरक्षरता व्याप्त है।
- क्षेत्र के 70.13 प्रतिशत आदिवासी लोग वन उपज संग्रह करते है।
- आदिवासियों की कुल आय में लगभग 10 से 18 प्रतिशत आय लघु वन उपज से प्राप्त होती है।
- लगभग 57.04 प्रतिशत आदिवासी अपनी वन उपज को आकस्मिक समय (जैसे बिमारी, मौत, दवाई, शादी आदि) में बेचते है न कि तब जब बाजार में अधिक कीमत मिलती हो। अतः इनमें विपणन कुशलता का अभाव है।

लुप्त होती लघुवन उपज : खतरे में आदिवासी आजीविका

- लगभग 71.14 प्रतिशत लोगो ने बताया कि संग्रहण के वैज्ञानिक उपकरणों एवं तरीकों के अभाव में उनकी वन उपज खराब हो जाती है। अतः क्षेत्र में संग्रहण के वैज्ञानिक उपकरणों का अभाव है।
- संग्रहण की उचित व्यवस्था के अभाव में सड़ने वाली प्रमुख वन उपजों में सीताफल व देशी आम (केरी) है।
- लगभग 64.54 प्रतिशत लोगों ने बताया कि शहद संग्रहण हेतु अधिकतर आदिवासी आग व धुएँ का उपयोग करते है जिससे कई बार जंगल में आग लगने से वन उपज एवं जीव जंतु नष्ट हो जाते हैं।
- क्षेत्र के लगभग 80 प्रतिशत से अधिक लोगों ने बताया कि पिछले कुछ वर्षों से वन उपज की कुछ प्रजातियाँ जैसे धावड़ा, सालर, खेर, सफेद मूसली, धावड़ा आदि नष्ट हो रही हैं।
- वन उपज के नष्ट होने के प्रमुख कारणों में वानिकी के दौरान प्रतिस्थापित पौधों में अन्य पौधे लगाना, वनों की अनियमित कटाई, सूखा आदि है।
- क्षेत्र के लगभग 70 प्रतिशत से अधिक लघु वन उपज संग्रहकर्ताओं ने बताया कि राजस संघ द्वारा घोषित कीमतों से संतुष्ट नही हैं।
- क्षेत्र के लगभग 60 प्रतिशत से अधिक लोगों ने बताया कि लघु वन उपज को खुले बाजारों एवं स्वयं सहायता समुहों को बेचने में अधिक लाभ होता है।
- संसद ने 15 दिसम्बर 2006 को राष्ट्रीय वन मान्यता कानून पारित किया, जिसके अन्तर्गत लघु वन उपज के संग्रहण एवं स्वामित्त्व का अधिकार तो प्रदान किया गया किन्तु परिवहन के अधिकार को स्पष्ट नही किया गया। जिसके कारण संग्रहकर्त्ताओं को वन विभाग के कर्मचारियों एवं ठेकेदारो द्वारा परेशान किया जाता है।

सुझावः–

- आदिवासियों को लघु वन उपज के परिवहन का अधिकार प्रदान किया जाये।
- क्षेत्र में स्वयं सेवी संस्थाओं के माध्यम से आदिवासियों की सौदेबाजी एवं विपणन कुशलता को सशक्त बनाया जाये।
- लघु वन उपज एवं इनके संग्रह में संलग्न लोगों के लिये विशेष बीमा योजना की शुरु की जानी चाहिये।
- जल्दी सड़ने वाली प्रमुख वन उपजों जैसे : सीताफल, देशी आम (केरी), जामुन, खजूर, करमदा आदि के लिये संग्रहण के वैज्ञानिक उपकरणों एवं परिवहन की उचित व्यवस्था की जानी चाहिये।
- क्षेत्र में लघु वन उपजों के खाद्य प्रसंस्करण एवं द्वितीयक उत्पादों के निर्माण से सम्बंधित लघु उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।
- क्षेत्र में आदिवासियों के आजीविका एवं रोजगार के अन्य स्रोतों का विकास किया जाना चाहिये, जिससे वनों पर आश्रितता एवं दबाव को कम किया जा सके।

सन्दर्भ सूची :

- ओह्जा, नबगाना : शिड्यूल–फिफ्थ एरियास, राइट ओवर एमएफपी. स्टील ए फार काई, पब्लिश्ड इन कम्यूनिटी फॉरेस्ट्री, वोल्यूम–3, पी. 4–7, 2000
- मिश्रा, प्रदीप : चेंजिंग नेचर ऑफ एनटीएफपी ट्रेड इन भाखर एरिया ऑफ आबूरोड़ ब्लॉक, राजस्थान
- पाल, माही, : पंचायत इन फिफ्थ शिड्यूल एरिया, मई 6–12, 2000, मुम्बई, समीक्षा ट्रस्ट
- राजस्थान में वनोपज आधारित आजीविका के लिये कानूनी परिदृश्य : कार्यशाला प्रतिवेदन, अगस्त–2007
- इण्डियन फॉरेस्ट एक्ट, 1927
- पेसा, दि फोरस्ट राइट एक्ट एण्ड दि ट्राइबल राइट इन इण्डियाः प्रासीडिंस ऑफ इन्टर्नेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन पॉवर्टी रिडक्शन एण्ड फोरस्ट,बैंकॉक, सितम्बर–2007
- इण्डियास फॉरेस्ट राइट एक्ट ऑफ 2006 : दि ऑकेजनल ब्रिफिंग पेपर ऑफ दि एशियन इण्डिजिनस एण्ड ट्राइबल पिपुल नेटवर्क, नई दिल्ली
- सेंसस रिपोर्टः ट्राइबल पॉपुलेशन इन राजस्थान–2001
- नागदा, बी.एल. : रिचर्स आर्टिकल ऑन ट्राइबल पॉपुलेशन एण्ड हैल्थ इन राजस्थान–2004 : पॉपुलेशन रिचर्स सेंटर, एम.एल.एस.यूनिवर्सिटी, उदयपुर(राज.)
- बहुगुना, वी.के. : कन्सर्वेशन ऑफ फॉरेस्ट एण्ड दि इश्यू ऑफ ट्राइबल राइट
- पटनायक, संजय, : पेसा, दि फोरस्ट राइट एक्ट एण्ड दि ट्राइबल राइट इन इण्डियाः प्रासीडिंस ऑफ इन्टर्नेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन पॉवर्टी रिडक्शन एण्ड फोरस्ट,बैंकॉक, सितम्बर–2007
- सेक्सरिया, पंकज, : कन्सर्वेशन इन इण्डिया एण्ड दि थिंक टु बियोंड, "टाइगर वर्सेज ट्राइबल–2007
- इण्डिया : अनलोकिंग अपोर्च्यूनिटिज फॉर फॉरेस्ट इन्डीपेंडेन्ट पीपुल,: एग्रीकल्चर एण्ड रुरल डीवलपमेंट सेक्टर यूनिट साउथ एशियन रिजन : वर्ड बैंक प्रोग्रेस रिपोर्ट–ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- प्रशासनिक प्रतिवेदन, वन विभाग, राजस्थान सरकार, 2007–08
- राजस्थान बजट पुस्तिका : वानिकी बजट 2007, 08, 09
- अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकार मान्यता) अधिनियम, 2006, प्रवेशिका, जंगज जमिन जन आंदोलन, उदयपुर